काशी-शास्त्रार्थ

कार्तिक सुदि १२, संवत् १९२६

काशी-शास्त्रार्थ (वैदिक यन्त्रालय काशी में मुद्रित, संवत् १९३७ के अनुसार)

भूमिका

मैं पाठकों को इस काशी के शास्त्रार्थ का (जो कि संवत् १९२६, मि० कार्तिक सुदि १२, मंगलवार के दिन ''स्वामी दयानन्द सरस्वती जी'' का काशीस्थ 'स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती' तथा 'बालशास्त्री' आदि पण्डितों के साथ हुआ था।) तात्पर्य सहज में प्रकाशित होने के लिये विदित करता हूं।

इस संवाद में स्वामी जी का पक्ष पाषाणमूर्तिपूजादिखण्डन-विषय और काशीवासी पण्डित लोगों का मण्डन का विषय था। उनको वेद-प्रमाण से मण्डन करना उचित था सो कुछ भी न कर सके। क्योंकि जो कोई भी पाषाणादि मूर्तिपूजादि में वैदिक प्रमाण होता तो क्यों न कहते और स्वपक्ष को वैदिक प्रमाणों से सिद्ध किये विना वेदों को छोड़कर अन्य मनुस्मृति आदि ग्रन्थ वेदों के अनुकूल हैं वा नहीं, इस प्रकरणान्तर में क्यों जा गिरते ? क्योंकि जो पूर्व प्रतिज्ञा को छोड़ के प्रकरणान्तर में जाना है वही पराजय का स्थान है। ऐसे हुए पश्चात् भी जिस-जिस ग्रन्थान्तर में से जो-जो पुराण आदि शब्दों से ब्रह्मवैवर्त्तादि ग्रन्थों को सिद्ध करने लगे थे सो भी सिद्ध न कर सके। पश्चात् प्रतिमा शब्द से मूर्तिपूजा को सिद्ध करना चाहा था वह भी न हो सका। पुनः पुराण शब्द विशेष्य वा विशेषणवाची इस में स्वामी जी का पक्ष विशेषणवाची और काशीस्थ पण्डितों का पक्ष विशेष्यवाची सिद्ध करना था, इसमें बहुत इधर उधर के वचन बोले परन्तु सर्वत्र स्वामी जी ने विशेषणवाची, पुराण शब्द को सिद्ध कर दिया और काशीस्थ पण्डित लोग विशेष्यवाची सिद्ध नहीं कर सके। सो आप लोग देखिए कि शास्त्रार्थ की इन बातों से क्या ठीक-ठीक विदित होता है।

और भी देखने की बात है कि जब माधवाचार्य दो पत्रे निकाल के सब के सामने पटक के बोले थे कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है उस पर स्वामी जी ने उसको विशेषणवाची सिद्ध कर दिया परन्तु काशी-निवासी पण्डितों से कुछ भी न बन पड़ा। एक बड़ी शोचनीय यह बात उन्होंने की जो किसी सभ्य मनुष्य के करने योग्य न थी कि ये लोग सभा में काशीराज

महाराज और काशीस्थ विद्वानों के सम्मुख असभ्यता का वचन बोले । क्या स्वामी जी के कहने पर भी काशीराज आदि चुप होके बैठे रहें और बुरे वचन बोलने वालों को न रोकें ? क्या स्वामी जी का पांच मिनट दो पत्रों के देखने में लगाके प्रत्युत्तर देना विद्वानों की बात नहीं थी ? और क्या सब से बुरी बात यह नहीं थी कि सब सभा के बीच ताली शब्द लड़कों के सदृश किया और ऐसे महा असभ्यता के व्यवहार करने में कोई भी उनको रोकने वाला न हुआ? और क्या एकदम उठके चुप होके बगीचे से बाहर निकल जाना और क्या सभा में वा अन्यत्र झूठा हल्ला करना धार्मिक और विद्वानों के आचरण से विरुद्ध नहीं था ?

यह तो हुआ सो हुआ परन्तु एक महा खोटा काम उन्होंने और किया जो सभा के व्यवहार से अत्यन्त विरुद्ध है कि एक पुस्तक स्वामी जी की झूठी निन्दा के लिए काशीराज के छापेखाने में छपाकर प्रसिद्ध किया और चाहा कि उन की बदनामी करें और करावें परन्तु इतनी झूठी चेष्टा किये पर भी स्वामी जी उनके कर्मों पर ध्यान न देकर वा उपेक्षा करके पुनरपि उनको वेदोक्त उपदेश प्रीति से आज तक बराबर करते ही जाते हैं । और उक्त २६ के संवत् से लेके अब संवत् १९३७ तक छठी वार काशी जी में आके सदा विज्ञापन लगाते जाते हैं कि पुनरपि जो कुछ आप लोगों ने वैदिक प्रमाण वा कोई युक्ति पाषाणादि मूर्तिपूजा आदि के सिद्ध करने के लिये पाई हो तो सभ्यतापूर्वक सभा करके फिर भी कुछ कहो वा सुनो । इस पर भी कुछ नहीं करते । यह भी कितने निश्चय करने की बात है परन्तु ठीक है कि जो कोई दृढ़ प्रमाण वा युक्ति काशीस्थ पण्डित लोग पाते अथवा कहीं वेदशास्त्र में प्रमाण होता तो क्या सम्मुख होके अपने पक्ष को सिद्ध करने न लगते और स्वामी जी के सामने न होते ?

इससे यही निश्चित सिद्धान्त जानना चाहिए कि जो इस विषय में स्वामी जी की बात है वही ठीक है । और देखो ! स्वामी जी की यह बात संवत् १९२६ के विज्ञापन से भी कि जिसमें सभा के होने के अत्युत्तम नियम छपवा के प्रसिद्ध किये थे; सत्य ठहरती है ।

उस पर पण्डित ताराचरण भट्टाचार्य ने अनर्थयुक्त विज्ञापन छपवा के प्रसिद्ध किया था । उस पर स्वामी जी के अभिप्राय से युक्त दूसरा विज्ञापन उसके उत्तर में पण्डित भीमसेन शर्मा ने छपवाकर कि जिसमें स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती जी और बालशास्त्री जी से शास्त्रार्थ होने की सूचना थी, प्रसिद्ध किया था, उस पर दोनों में से कोई एक भी शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त न हुआ।

क्या अब भी किसी को शङ्का रह सकती है जो-जो स्वामी जी कहते हैं वह सत्य है वा नहीं ? किन्तु निश्चय करके जानना चाहिए कि स्वामी जी की सब बातें वेद और युक्ति के अनुकूल होने से सर्वथा सत्य ही हैं ।

और जहां छान्दोग्य उपनिषद् आदि को स्वामी जी ने वेद नाम से कहा है वहां वहां उन पण्डितों के मत के अनुसार कहा है किन्तु ऐसा स्वामी जी का मत नहीं । स्वामी जी मन्त्रसंहिताओं ही को वेद मानते हैं क्योंकि जो मन्त्रसंहिता हैं वे ईश्वरोक्त होने से निर्भ्रान्त, सत्यार्थयुक्त हैं और ब्राह्मणग्रन्थ जीवोक्त अर्थात् ऋषि, मुनि आदि विद्वानों के कहे हैं वे भी प्रमाण तो हैं परन्तु वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण हो भी सकते हैं । मन्त्रसंहिता तो किसी के विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण कभी नहीं हो सकती क्योंकि वे तो स्वतःप्रमाण हैं । (प्रबन्धकर्त्ता–वै०य० काशी)

अथ काशीस्थ-शास्त्रार्थः

धर्माधर्मयोर्मध्ये शास्त्रार्थविचारो विदितो भवतु । एको दिगम्बरस्सत्य-शास्त्रार्थविद्दयानन्दसरस्वती स्वामी गङ्गातटे विहरति । स ऋग्वेदादिसत्य-शास्त्रेभ्यो निश्चयं कृत्वैवं वदति–''वेदेषु पाषाणादिमूर्तिपूजनविधानं शैवशाक्त-गाणपतवैष्णवादिसम्प्रदाया रुद्राक्षत्रिपुण्ड्रादिधारणं च नास्त्येव; तस्मादेतत् सर्वं मिथ्यैवास्ति; नाचरणीयं कदाचित् । कुतः ? एतत् वेदविरुद्धाप्रसिद्धाचरणे महत्पापं भवतीतीयं वेदादिषु मर्यादा लिखितास्ति ।''

एवं हरद्वारमारभ्य गङ्गातटे अन्यत्रापि यत्र कुत्रचिद् दयानन्दसरस्वती स्वामी खण्डनं कुर्वन् सन् काशीमागत्य दुर्गाकुण्डसमीप आनन्दारामे यदा स्थितिं कृतवान् तदा काशीनगरे महान् कोलाहलो जातः । बहुभिः पण्डितैर्वेदादिपुस्तकानां मध्ये विचारः कृतः । परन्तु क्वापि पाषाणादिमूर्तिपूजनादिविधानं न लब्धम् ।

प्रायेण बहूनां पाषाणपूजनादिष्वाग्रहो महानस्ति, अतः काशीराजमहाराजेन बहून् पण्डितानाहूय पृष्टं किं कर्त्तव्यमिति ? तदा सर्वैर्जनैर्निश्चयः कृतो येन केन प्रकारेण दयानन्दस्वामिना सह शास्त्रार्थं कृत्वा बहुकालात् प्रवृत्तस्याचारस्य स्थापनं यथा भवेत् तथा कर्त्तव्यमेवेति ।

पुनः कार्त्तिकशुक्लद्वादश्यामेकोनविंशतिशतषड्विंशतितमे संवत्सरे (१९२६) मङ्गलवासरे महाराजः काशीनरेशो बहुभिः पण्डितैः सह शास्त्रार्थकरणार्थमानन्दारामं यत्र दयानन्दस्वामिना निवासः कृतः, तत्रागतः।

तदा दयानन्दस्वामिना महाराजं प्रत्युक्तम्–वेदानां पुस्तकान्यानीतानि न वा ?

तदा महाराजेनोक्तम्—वेदाः पण्डितानां कण्ठस्थाः सन्ति किं प्रयोजनं पुस्तकानामिति ?

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—पुस्तकैर्विना पूर्वापरप्रकरणस्य यथावद् विचारस्तु न भवति ।

अस्तु तावत् पुस्तकानि नानीतानि ।

तदा पण्डितरघुनाथप्रसादकोटपालेन नियमः कृतो दयानन्दस्वामिना सहैकैकः पण्डितो वदतु न तु युगपदिति ।

तदादौ ताराचरणनैयायिको विचारार्थमुद्यतः । तं प्रति स्वामिदयानन्देनोक्तम्—युष्माकं वेदानां प्रामाण्यं स्वीकृतमस्ति न वेति ?

तदा ताराचरणेनोक्तम्—सर्वेषां वर्णाश्रमस्थानां वेदेषु प्रामाण्यस्वीकारोऽस्तीति ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदे पाषाणादिमूर्तिपूजनस्य यत्र प्रमाणं भवेत्तद्दर्शनीयम् । नास्ति चेद्वद नास्तीति ।

तदा ताराचरणभट्टाचार्येणोक्तम्—वेदेषु प्रमाणमस्ति वा नास्ति परन्तु वेदानामेव प्रामाण्यं नान्येषामिति यो ब्रूयात्तं प्रति किं वदेत् ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अन्यो विचारस्तु पश्चाद् भविष्यति वेदविचार एव मुख्योऽस्ति तस्मात् स एवादौ कर्त्तव्यः । कुतो वेदोक्तकर्मैव मुख्यमस्त्यतः। मनुस्मृत्यादीन्यपि वेदमूलानि सन्ति तस्मात्तेषामपि, प्रामाण्यमस्ति न तु वेदविरुद्धानां वेदाप्रसिद्धानां चेति ।

तदा ताराचरणभट्टाचार्य्येणोक्तम्—मनुस्मृतेः क्वास्ति वेदमूलमिति ।

स्वामिनोक्तम्—'यद् वै किञ्चन मनुरवदत्तद् भेषजं भेषजताया' इति सामवेदे* ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—रचनानुपपत्तेश्च अनुमानमित्यस्य व्याससूत्रस्य किं मूलमस्तीति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्य प्रकरणस्योपरि विचारो न कर्त्तव्य इति ।

पुनर्विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वदैव त्वं यदि जानासीति ।

तदा दयानन्दस्वामिना प्रकरणान्तरे गमनम्भविष्यतीति मत्वा नेदमुक्तम्।

कदाचित् कण्ठस्थं यस्य न भवेत् स पुस्तकं दृष्ट्वा वदेदिति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कण्ठस्थं नास्ति चेच्छास्त्रार्थं कर्तुं कथमुद्यतः काशीनगरे चेति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—भवतः सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति ?

*** इदं पण्डितानामेव मतमङ्गीकृत्योक्तमतो नेदं स्वामिनो मतमिति वेद्यम् ।**

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—मम सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—धर्मस्य किं स्वरूपमिति ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्म इति।

तदा स्वामिनोक्तम्—इदन्तु तव संस्कृतं, नास्त्यस्य प्रामाण्यं, कण्ठस्थां श्रुतिं स्मृतिं वा वदेति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—''चोदनालक्षणार्थो धर्मः।'' इति जैमिनि-सूत्रमिति ।*

तदा स्वामिनोक्तम्—चोदना का, चोदना नाम प्रेरणा तत्रापि श्रुतिर्वा स्मृतिर्वक्तव्या यत्र प्रेरणा भवेत् ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम् ।

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्तु तावद्धर्मस्वरूपप्रतिपादिका श्रुतिर्वा स्मृतिस्तु नोक्ता किं च धर्मस्य कति लक्षणानि भवन्ति वदतु भवानिति ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—एकमेव लक्षणं धर्मस्येति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—किं च तदिति ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम् ।

तदा स्वामिनोक्तम्—धर्मस्य तु दश लक्षणानि सन्ति भवता कथमुक्तमेक-मेवेति ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कानि तानि लक्षणानीति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

इति मनुस्मृतेः श्लोकोऽस्ति ।**

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—अहं सर्वं धर्म्मशास्त्रं पठितवानिति ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—त्वमधर्म्मस्य लक्षणानि वदेति ।

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम् ।

तदा बहुभिर्युगपत् पृष्टम्—प्रतिमा शब्दो वेदे नास्ति किमिति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—प्रतिमाशब्दस्त्वस्तीति ।

तदा तैरुक्तम्—क्वास्तीति ?

*** इदन्तु सूत्रमस्ति, नेयं श्रुतिर्वा स्मृतिः, सर्वं मम कण्ठस्थमस्तीति प्रतिज्ञायेदानीं कण्ठस्थं नोच्यत इति प्रतिज्ञाहानेस्तस्य कुतो न पराजय इति वेद्यम् ।**

**** अत्रापि तस्य प्रतिज्ञाहानेर्निग्रहस्थानं जातमिति बोध्यम् ।**

तदा स्वामिनोक्तम्—सामवेदस्य ब्राह्मणे चेति ।

तदा तैरुक्तम्—किं च तद्वचनमिति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्तीत्यादीनि।

तदा तैरुक्तम्—प्रतिमाशब्दस्तु वेदे* वर्त्तते भवान् कथं खण्डनं करोति?

तदा स्वामिनोक्तम्—प्रतिमाशब्देनैव पाषाणपूजनादेः प्रामाण्यं न भवति। प्रतिमाशब्दस्यार्थः कर्त्तव्य इति ।

तदा तैरुक्तम्—यस्मिन् प्रकरणेऽयं मन्त्रोऽस्ति तस्य कोऽर्थ इति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अथातोद्भुतशान्तिं व्याख्यास्याम इत्युपक्रम्य त्रातार-मिन्द्रमित्यादयस्तत्रैव सर्वे मूलमन्त्रा लिखिताः । एतेषां मध्यात् प्रतिमन्त्रेण त्रित्रिसहस्राण्याहुतयः कार्यास्ततो व्याहृतिभिः पञ्च पञ्चाहुतयश्चेति लिखित्वा सामगानं च लिखितम् । अनेनैव कर्म्मणाद्भुतशान्तिर्विहिता । यस्मिन्मन्त्रे प्रतिमाशब्दोऽस्ति स मन्त्रो न मर्त्यलोकविषयोऽपितु ब्रह्मलोकविषय एव । तद्यथा—''स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽऽथेति'' प्राच्या दिशोद्भुतदर्शनशान्तिमुक्त्वा ततो दक्षिणस्याः पश्चिमाया दिशः शान्तिं कथयित्वा उत्तरस्या दिशः शान्तिरुक्ता। ततो भूमेश्चेति मर्त्यलोकस्य प्रकरणं समाप्यान्तरिक्षस्य शान्तिरुक्ता । ततो दिवश्च शान्तिविधानमुक्तम् । ततः परस्य स्वर्गस्य च नाम ब्रह्मलोकस्यैवेति।

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—यस्यां यस्यां दिशि या या देवता तस्यास्तस्या देवतायाः शान्तिकरणेन दृष्टिविघ्नोपशान्तिर्भवतीति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—इदं तु सत्यं परन्तु विघ्नदर्शयिता कोऽस्तीति ?

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—इन्द्रियाणि दर्शयितृणीति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—इन्द्रियाणि तु द्रष्टृणि भवन्ति न तु दर्शयितृणि, परन्तु स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र स शब्दवाच्यः कोऽस्तीति ?

तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम् ।

तदा शिवसहायेन प्रयागस्थेनोक्तम्—अन्तरिक्षादिगमनं शान्तिकरणस्य फलमनेनोच्यते चेति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—भवता तत्प्रकरणं दृष्टं किम् ? दृष्टं चेत्तर्हि कस्यापि मन्त्रस्यार्थं वदेति ।

तदा शिवसहायेन मौनं कृतम् ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदाः कस्माज्जाता इति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—वेदा ईश्वराज्जाता इति ।

***अत्रापि तेषामवेदे ब्राह्मणग्रन्थे वेदबुद्धित्वाद् भ्रान्तिरेवास्तीति वेद्यम् ।**

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कस्मादीश्वराज्जाताः ? किं न्यायशास्त्रोक्ताद्वा योगशास्त्रोक्ताद्वा वेदान्तशास्त्रोक्ताद्वेति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—ईश्वरा बहवो भवन्ति किमिति ?

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—ईश्वरस्त्वेक एव परन्तु वेदा कीदृग्लक्षणा-दीश्वराज्जाता इति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—सच्चिदानन्दलक्षणादीश्वराद्वेदा जाता इति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कोऽस्ति सम्बन्धः ? किं प्रतिपाद्यप्रतिपादक-भावो वा जन्यजनकभावो वा समवायसम्बन्धो वा स्वस्वामिभाव इति तादात्म्यभावो वेति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—कार्यकारणभावः सम्बन्धश्चेति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—मनो ब्रह्मेत्युपासीत, आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेति यथा प्रतीकोपासनमुक्तं तथा शालिग्रामपूजनमपि ग्राह्यमिति।

तदा स्वामिनोक्तम्—यथा मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेत्यादिवचनं वेदेषु* दृश्यन्ते तथा पाषाणादिब्रह्मेत्युपासीतेति वचनं क्वापि वेदेषु न दृश्यते। पुनः कथं ग्राह्यम्भवेदिति ?

तदा माधवाचार्येणोक्तम्—'उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च ।' इति मन्त्रस्थेन पूर्त्तशब्देन कस्य ग्रहणमिति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—वापीकूपतडागारामाणामेव नान्यस्येति ।

तदा माधवाचार्येणोक्तम्—पाषाणादिमूर्त्तिपूजनमत्र कथं न गृह्यते चेति?

तदा स्वामिनोक्तम्—पूर्त्तशब्दस्तु पूर्त्तिवाची वर्त्तते तस्मान्न कदाचित्पाषाणादि-मूर्तिपूजनग्रहणं सम्भवति । यदि शङ्कास्ति तर्हि निरुक्तमस्य मन्त्रस्य पश्य ब्राह्मणं चेति ।

ततो माधवाचार्येणोक्तम्—पुराणशब्दो वेदेष्वस्ति न वेति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—पुराणशब्दस्तु बहुषु स्थलेषु वेदेषु दृश्यते परन्तु पुराणशब्देन कदाचिद् ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थानां ग्रहणं न भवति । कुतः ? पुराणशब्दस्तु भूतकालवाच्यस्ति सर्वत्र द्रव्यविशेषणं चेति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—"एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानि" इत्यत्र बृहदारण्यकोपनिषदि पठितस्य सर्वस्य प्रामाण्यं वर्त्तते न वेति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अस्त्येव प्रामाण्यमिति ।

---

* **इदमपि पण्डितमतानुसारेणोक्तम् । नेदं स्वामिनो मतमिति बोध्यम् ।**

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—श्लोकस्यापि प्रामाण्यं चेत्तदा सर्वेषां प्रामाण्यमागतमिति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—सत्यानामेव श्लोकानां प्रामाण्यं नान्येषामिति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमिति?

तदा स्वामिनोक्तम्—पुस्तकमानय पश्चाद्विचारः कर्त्तव्य इति ।

तदा माधवाचार्य्येण वेदस्य* द्वे पत्रे निस्सारिते । अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्त्वेति ।

तदा स्वामिनोक्तम्—कीदृशमस्ति वचनं पठ्यतामिति ।

तदा माधवाचार्य्येण पाठः कृतस्तत्रेदं वचनमस्ति—''ब्राह्मणानीतिहासः पुराणानीति'' ।

तदा स्वामिनोक्तम्—पुराणानि ब्राह्मणानि नाम सनातनानीति विशेषणमिति।

तदा बालशास्त्र्यादिभिरुक्तम्—ब्राह्मणानि नवीनानि भवन्ति किमिति?

तदा स्वामिनोक्तम्—नवीनानि ब्राह्मणानीति कस्यचिच्छङ्कापि माभूदिति विशेषणार्थः ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—इतिहासशब्दव्यवधानेन कथं विशेषणं भवेदिति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अयं नियमोऽस्ति किं व्यवधानाद्विशेषणयोगो न भवेत्सन्निधानादेव भवेदिति ?

'अजो नित्यश्शाश्वतोऽयम्पुराणो न' इति दूरस्थस्य देहिनो विशेषणानि गीतायां कथम्भवन्ति ? व्याकरणेऽपि नियमो नास्ति समीपस्थमेव विशेषणं भवेन्न दूरस्थमिति ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—इतिहासस्यात्र पुराणशब्दो विशेषणं नास्ति तस्मादितिहासो नवीनो ग्राह्यः किमिति ?

तदा स्वामिनोक्तम्—अन्यत्रास्तीतिहासस्य पुराणशब्दो विशेषणं तद्यथा—'इतिहासः पुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः' इत्युक्तम् ।

तदा वामनाचार्यादिभिरयं पाठ एव वेदे नास्तीत्युक्तम् ।

तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—यदि वेदेष्वयम्पाठो** न भवेच्चेन्मम पराजयो यद्ययम्पाठो वेदे यथावद् भवेत्तदा भवताम्पराजयश्चेयम्प्रतिज्ञा लेख्येत्युक्तन्तदा सर्वेमौंनं कृतमिति ।

*** इदमपि तन्मतमनुसृत्योक्तं नेदं स्वामिनो मतमिति वेदितव्यमेते पत्रे तु गृह्यसूत्रस्याभवतामिति च ।**

**** इदमपि पण्डितानां मतं नैव स्वामिन इति वेद्यम् ।**

तदा स्वामिनोक्तम्–इदानीं व्याकरणे कल्मसंज्ञा क्वापि लिखिता न वेति ?

तदा बालशास्त्रिणोक्तम्–एकस्मिन् सूत्रे संज्ञा तु न कृता परन्तु महाभाष्यकारेणोपहासः कृतः इति ।

तदा स्वामिनोक्तम्–कस्य सूत्रस्य महाभाष्ये संज्ञा तु न कृतोपहासश्चेत्युदाहरणप्रत्युदाहरणपूर्वकं समाधानं वदेति ?

बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तमन्येनापि चेति ।

तदा माधवाचार्येण द्वे पत्रे वेदस्य* निस्सार्य्य सर्वेषां पण्डितानाम्मध्ये प्रक्षिप्ते । अत्र यज्ञसमाप्तौ सत्यां दशमे दिवसे पुराणानां पाठं शृणुयादिति लिखितमत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्तम् ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामिना दयानन्दस्वामिनो हस्ते पत्रे दत्ते ।

तदा स्वामी पत्रे द्वे गृहीत्वा पञ्चक्षणमात्रं विचारं कृतवान् । तत्रेदं वचनं वर्तते–"दशमे दिवसे यज्ञान्ते पुराणविद्यावेदः, इत्यस्य श्रवणं यजमानः कुर्य्यादिति ।"

अस्यायमर्थः–पुराणी चासौ विद्या च पुराणविद्या पुराणविद्यैव वेदः पुराणविद्यावेद इति नाम ब्रह्मविद्यैव ग्राह्या । कुतः ? एतदन्यत्रर्ग्वेदादीनां श्रवणमुक्तं न चोपनिषदाम् । तस्मादुपनिषदामेव ग्रहणं नान्येषाम् । पुराणविद्यावेदोऽपि ब्रह्मविद्यैव भवितुमर्हति नान्ये नवीना ब्रह्मवैवर्तादयो ग्रन्थाश्चेति । यदि ह्येवं पाठो भवेद् ब्रह्मवैवर्तादयोऽष्टादश ग्रन्थाः पुराणानि चेति, क्वाप्येवं वेदेषु** पाठो नास्त्येव तस्मात्कदाचित्तेषां ग्रहणं न भवदेवेत्यर्थकथनस्येच्छा कृता ।

तदा विशुद्धानन्दस्वामी मम विलम्बो भवतीदानीं गच्छामीत्युक्त्वा गमनायोत्थितोऽभूत् । ततः सर्वे पण्डिता उत्थाय कोलाहलं कृत्वा गताः । एवं च तेषां कोलाहलमात्रेण सर्वेषां निश्चयो भविष्यति दयानन्दस्वामिनः पराजयो जात इति ।

अथात्र बुद्धिमद्भिर्विचारः कर्त्तव्यः कस्य जयो जातः कस्य पराजयश्चेति।

दयानन्दस्वामिनश्चत्वारः पूर्वोक्ताः पूर्वपक्षास्सन्ति । तेषां चतुर्णां प्रामाण्यं नैव वेदेषु निःसृतं पुनस्तस्य पराजयः कथं भवेत् ? पाषाणादिमूर्तिपूजनरचनादिविधायकं वेदवाक्यं सभायामेतैः सर्वैर्नोक्तम् ।

येषां वेदविरुद्धेषु च पाषाणादिमूर्तिपूजनादिषु शैवशाक्तवैष्णवादिसम्प्रदायादिषु रुद्राक्षतुलसीकाष्ठमालाधारणादिषु त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरचनादिषु नवीनेषु

* एते पत्रे तु गृह्यसूत्रस्य भवतामिति ।

** इदमपि तन्मतमेवास्ति न स्वामिन इति ।

ब्रह्मवैवर्तादिग्रन्थेषु च महानाग्रहोऽस्ति तेषामेव पराजयो जात इति तथ्यमेवेति।।

भाषार्थ

एक दयानन्द सरस्वती नामक संन्यासी दिगम्बर गङ्गा के तीर विचरते रहते हैं जो सत्पुरुष और सत्यशास्त्रों के वेत्ता हैं, उन्होंने सम्पूर्ण ऋग्वेदादि का विचार किया है । सो ऐसा सत्यशास्त्रों को देख निश्चय करके कहते हैं कि **''पाषाणादि मूर्तिपूजन, शैव, शाक्त, गाणपत और वैष्णव आदि सम्प्रदायों और रुद्राक्ष, तुलसी माला, त्रिपुण्ड्रादि धारण का विधान कहीं भी वेदों में नहीं है।** इससे ये सब मिथ्या ही हैं । कदापि इनका आचरण न करना चाहिये । क्योंकि वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध के आचरण से बड़ा पाप होता है ऐसी मर्यादा वेदों में लिखी है ।''

इस हेतु से उक्त स्वामी जी हरिद्वार से लेकर सर्वत्र इसका खण्डन करते हुए काशी में आके दुर्गाकुण्ड के समीप आनन्दबाग में स्थित हुए। उनके आने की धूम मची । बहुत से पण्डितों ने वेदों के पुस्तकों में विचार करना आरम्भ किया । परन्तु पाषाणादि मूर्तिपूजा का विधान कहीं भी किसी को न मिला ।

बहुधा करके इसके पूजन में आग्रह बहुतों को है । इससे काशीराज महाराज ने बहुत से पण्डितों को बुलाकर पूछा कि इस विषय में क्या करना चाहिये ? तब सब ने ऐसा निश्चय करके कहा कि किसी प्रकार से दयानन्द सरस्वती स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करके बहुकाल से प्रवृत्त आचार को जैसे स्थापना हो सके करना चाहिए ।

निदान कार्तिक सुदि १२, सं० १९२६, मङ्गलवार को महाराज काशीनरेश बहुत से पण्डितों को साथ लेकर जब स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने के हेतु आए तब दयानन्द स्वामी जी ने महाराज से पूछा कि आप वेदों की पुस्तक ले आए हैं वा नहीं ?

महाराज ने कहा कि—वेद सम्पूर्ण पण्डितों को कण्ठस्थ हैं । पुस्तकों का क्या प्रयोजन है ?

तब दयानन्द सरस्वती जी ने कहा कि—पुस्तकों के विना पूर्वापर प्रकरण का विचार ठीक-ठीक नहीं हो सकता । भला पुस्तक नहीं लाए तो नहीं सही परन्तु किस विषय पर विचार होगा ?

पण्डितों ने कहा कि—तुम मूर्तिपूजा का खण्डन करते हो । हम लोग उसका मण्डन करेंगे ।

पुनः स्वामी जी ने कहा कि—जो कोई आप लोगों में मुख्य हो वही एक पण्डित मुझ से संवाद करे ।

पण्डित रघुनाथप्रसाद कोतवाल ने यह नियम किया कि स्वामी जी से एक-एक पण्डित विचार करे ।

पुनः सब से पहले ताराचरण नैयायिक स्वामी जी से विचार हेतु सम्मुख प्रवृत्त हुए ।

स्वामी जी ने उनसे पूछा कि—आप वेदों का प्रमाण मानते हैं वा नहीं?

उन्होंने उत्तर दिया कि—जो वर्णाश्रम में स्थित हैं उन सब को वेदों का प्रमाण ही है ।*

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—कहीं वेदों में पाषाणादि मूर्तियों के पूजन का प्रमाण है वा नहीं ? यदि हो तो दिखलाइए और जो नहीं तो कहिये कि नहीं है ।

पण्डित ताराचरण ने कहा कि—वेदों में प्रमाण है वा नहीं परन्तु जो एक वेदों ही का प्रमाण मिलता है औरों का नहीं उसके प्रति क्या कहना चाहिए?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—औरों का विचार पीछे होगा । वेदों का विचार मुख्य है । इस निमित्त से इस का विचार पहले ही करना चाहिए। क्योंकि वेदोक्त ही कर्म्म मुख्य है । और मनुस्मृति आदि भी वेदमूलक हैं इस से इनका भी प्रमाण है । क्योंकि जो-जो वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध हैं उनका प्रमाण नहीं होता ।

पण्डित ताराचरण ने कहा कि—मनुस्मृति का वेदों में कहां मूल है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—'जो जो मनु जी ने कहा है सो-सो औषधों का भी औषध है' ऐसा सामवेद के ब्राह्मण में कहा है ।**

विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—'रचना की अनुपपत्ति होने से अनुमानप्रतिपाद्य प्रधान, जगत् का कारण नहीं' व्यास जी के इस सूत्र का वेदों में क्या मूल है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—यह प्रकरण से भिन्न बात है । इस पर विचार करना न चाहिए ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि—यदि तुम जानते हो तो अवश्य कहो ।

*** इससे यह समझना कि स्वामी जी भी वर्णाश्रमस्थ हैं वेदों को मानते हैं।**

**** यह कहना उन पण्डितों के मत के अनुसार ठीक है परन्तु स्वामी जी तो ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते किन्तु मन्त्रभाग ही को वेद मानते हैं ।**

इस पर स्वामी जी ने यह समझकर कि प्रकरणान्तर में वार्त्ता जा रहेगी; कहा–जो कदाचित् किसी को कण्ठ न हो तो पुस्तक देखकर कहा जा सकता है ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि–जो कण्ठस्थ नहीं है तो काशी नगर में शास्त्रार्थ करने को क्यों उद्यत हुए ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–आप को सब कण्ठाग्र है ?

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि–हां हम को कण्ठस्थ है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–कहिये धर्म्म का क्या स्वरूप है?

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि–जो वेदप्रतिपाद्य फलसहित अर्थ है वही धर्म कहलाता है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–यह आप का संस्कृत है । इसका क्या प्रमाण है, श्रुति वा स्मृति कहिये ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि–जो चोदनालक्षण अर्थ है सो धर्म कहलाता है । यह जैमिनि का सूत्र है ।

स्वामी जी ने कहा कि–यह सूत्र है । यहां श्रुति वा स्मृति को कण्ठ से क्यों नहीं कहते ? और चोदना नाम प्रेरणा का है वहां भी श्रुति वा स्मृति कहना चाहिए जहां प्रेरणा होती है ।

जब इसमें विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा, तब स्वामी जी ने कहा कि–अच्छा आपने धर्म का स्वरूप तो न कहा परन्तु धर्म के कितने लक्षण हैं कहिये ?

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि–धर्म का एक ही लक्षण है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–वह कैसा है ?

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा ।

तब स्वामी जी ने कहा–धर्म्म के तो दश लक्षण हैं । आप एक ही क्यों कहते हैं ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि–वे कौन लक्षण हैं ?

इस पर स्वामी जी ने मनुस्मृति का वचन कहा कि–धैर्य्य १, क्षमा २, दम ३, चोरी का त्याग ४, शौच ५, इन्द्रियों का निग्रह ६, बुद्धि ७, विद्या का बढ़ाना ८, सत्य ९, और अक्रोध अर्थात् क्रोध का त्याग १०। ये दश धर्म के लक्षण हैं । फिर आप कैसे एक लक्षण कहते हैं ?

तब बालशास्त्री ने कहा कि–हां हमने सब धर्मशास्त्र देखा है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि–आप अधर्म का लक्षण कहिये ?

तब बालशास्त्री जी ने कुछ भी उत्तर न दिया ।

फिर बहुत से पण्डितों ने इकट्ठे हल्ला करके पूछा कि—वेद में प्रतिमा शब्द है वा नहीं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—प्रतिमा शब्द तो है ।

फिर उन लोगों ने कहा कि—कहां पर है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—सामवेद के ब्राह्मण में है ।

फिर उन लोगों ने कहा कि—वह कौन सा वचन है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—यह है—"देवता के स्थान कम्पायमान होते और प्रतिमा हँसती है इत्यादि* ।

फिर उन लोगों ने कहा कि—प्रतिमा शब्द तो वेदों में भी है फिर आप कैसे खण्डन करते हैं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—प्रतिमा शब्द से पाषाणादि मूर्तिपूजनादि का प्रमाण नहीं हो सकता है । इसलिए प्रतिमा शब्द का अर्थ करना चाहिए इसका क्या अर्थ है ?

तब उन लोगों ने कहा कि—जिस प्रकरण में यह मन्त्र है उस प्रकरण का क्या अर्थ है ?

इस पर स्वामी ने कहा कि—यह अर्थ है—अब अद्‌भुत शान्ति की व्याख्या करते हैं ऐसा प्रारम्भ करके फिर रक्षा करने के लिए, इन्द्र [त्रातारमिन्द्र] इत्यादि सब मूलमन्त्र वहीं सामवेद के ब्राह्मण में लिखे हैं। इन में से प्रति मन्त्र करके तीन हजार आहुति करनी चाहियें । इस के अनन्तर व्याहृति करके पांच-पांच आहुति करनी चाहियें । ऐसा लिख के सामगान भी करना लिखा है । इस क्रम करके अद्‌भुत शान्ति का विधान किया है । जिस मन्त्र में प्रतिमा शब्द है सो मन्त्र मृत्युलोक विषयक नहीं किन्तु ब्रह्मलोक विषयक है । सो ऐसा है कि 'जब विघ्नकर्त्ता देवता पूर्वदिशा में वर्त्तमान होवे' इत्यादि मन्त्रों से अद्‌भुतदर्शन की शान्ति कहकर फिर दक्षिण दिशा, पश्चिम दिशा और उत्तर दिशा, इसके अनन्तर भूमि की शान्ति कहकर मृत्युलोक का प्रकरण समाप्त कर अन्तरिक्ष की शान्ति कहके, इसके अनन्तर स्वर्गलोक फिर परमस्वर्ग अर्थात् ब्रह्मलोक की शान्ति कही है । इस पर सब चुप रहे ।

फिर बालशास्त्री ने कहा कि—जिस-जिस दिशा में जो-जो देवता है उस-उस की शान्ति करने से अद्‌भुत देखने वालों के विघ्न की शान्ति होती है ।

*** यह वेदवचन नहीं किन्तु सामवेद के षड्‌विंश ब्राह्मण का है परन्तु वहां भी यह प्रक्षिप्त है क्योंकि वेदों से विरुद्ध है ।**

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—यह तो सत्य है परन्तु इस प्रकार में विघ्न दिखाने वाला कौन है ?

तब बालशास्त्री ने कहा कि—इन्द्रियां दिखाने वाली हैं ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—इन्द्रियां तो देखने वाली हैं दिखाने वाली नहीं । परन्तु 'स प्राची दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र' इत्यादि मन्त्रों में 'स' शब्द का वाच्यार्थ क्या है ? तब बालशास्त्री ने कुछ न कहा ।

फिर पण्डित शिवसहाय जी ने कहा कि—अन्तरिक्ष आदि गमन, शान्ति करने से फल इस मन्त्र करके कहा जाता है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—आपने वह प्रकरण देखा है तो किसी मन्त्र का अर्थ तो कहिये ?

तब शिवसहाय जी चुप हो रहे ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—वेद किससे उत्पन्न हुए हैं?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि **वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं ।**

फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा—किस ईश्वर से ? क्या न्यायशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से वा योगशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से ? अथवा वेदान्तशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से ? इत्यादि ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—क्या ईश्वर बहुत से हैं ?

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—ईश्वर तो एक ही है परन्तु वेद कौन से लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—सच्चिदानन्द लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—ईश्वर और वेदों में क्या सम्बन्ध है ? क्या प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव वा जन्यजनकभाव अथवा समवायसम्बन्ध वा स्वस्वामिभाव अथवा तादात्म्य सम्बन्ध है ? इत्यादि ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—**कार्य्यकारणभाव सम्बन्ध है ।**

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—जैसे मन में ब्रह्मबुद्धि और सूर्य्य में ब्रह्मबुद्धि करके प्रतीक उपासना कही है वैसे ही शालिग्राम के पूजन का ग्रहण करना चाहिए ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—जैसे "मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि वचन वेदों* में देखने में आते हैं वैसे "पाषाणादि

*** यह भी उन्हीं पण्डितों का मत है स्वामी जी का नहीं, क्योंकि स्वामी जी तो ब्राह्मण पुस्तकों को ईश्वरकृत नहीं मानते ।**

ब्रह्मेत्युपासीत'' इत्यादि वचन वेदादि में नहीं देख पड़ता फिर क्योंकर इस का ग्रहण हो सकता है ?

तब माधवाचार्य ने कहा कि—''उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳ सृजेथामयञ्च'' इति । इस मन्त्र में पूर्त्त शब्द से किसका ग्रहण है? ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—वापी, कूप, तडाग और आराम का ग्रहण है ।

माधवाचार्य ने कहा कि—इससे पाषाणादि मूर्तिपूजन का ग्रहण क्यों नहीं होता है ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—पूर्त्त शब्द पूर्ति का वाचक है । इससे कदाचित् पाषाणादि मूर्तिपूजन का ग्रहण नहीं हो सकता यदि शङ्का हो तो इस मन्त्र का निरुक्त ब्राह्मण देखिए ।

तब माधवाचार्य ने कहा कि—पुराण शब्द वेदों में है वा नहीं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—**पुराण शब्द तो बहुत सी जगह वेदों में है** परन्तु पुराण शब्द से ब्रह्मवैवर्त्तादिक ग्रन्थों का कदाचित् ग्रहण नहीं हो सकता । क्योंकि **पुराणशब्द भूतकालवाची है और सर्वत्र द्रव्य का विशेषण ही होता है ।**

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—बृहदारण्यक उपनिषत् के इस मन्त्र में कि—''एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीति'' यह सब जो पठित है इसका प्रमाण है वा नहीं ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—हां प्रमाण है ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—यदि श्लोक का भी प्रमाण है तो सब का प्रमाण आया ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—सत्य श्लोकों ही का प्रमाण होता है औरों का नहीं ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—पुस्तक लाइए तब इसका विचार हो।

माधवाचार्य ने वेदों के दो पत्रे* निकाले और कहा कि यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ?

*** यह भी उन्हीं का मत है स्वामी जी का नहीं, क्योंकि ये गृह्यसूत्र के पत्रे थे ।**

स्वामी जी ने कहा कि—कैसा वचन है ? पढ़िये ! ।

तब माधवाचार्य ने यह पढ़ा—'ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानीति' ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—यहां पुराण शब्द ब्राह्मण का विशेषण है अर्थात् पुराने नाम सनातन ब्राह्मण हैं ।

तब बालशास्त्री जी आदि ने कहा कि—ब्राह्मण कोई नवीन भी होते हैं?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि नवीन ब्राह्मण नहीं हैं परन्तु ऐसी शङ्का भी किसी को न हो इसलिये यहां यह विशेषण कहा है ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—यहां इतिहास शब्द के व्यवधान होने से कैसे विशेषण होगा ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—क्या ऐसा नियम है कि व्यवधान से विशेषण नहीं होता और अव्यवधान ही में होता है क्योंकि 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।'' इस श्लोक में दूरस्थ देही का भी क्या विशेषण नहीं है ? और कहीं व्याकरणादि में भी यह नियम नहीं किया है कि समीपस्थ ही विशेषण होते हैं दूरस्थ नहीं ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि—यहां इतिहास का तो पुराण शब्द विशेषण नहीं है । इससे क्या इतिहास नवीन ग्रहण करना चाहिए ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—और जगह पर इतिहास का विशेषण पुराण शब्द है। सुनिये—''इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः।'' इत्यादि में कहा है ।

तब वामनाचार्य आदिकों ने कहा कि—वेदों में यह पाठ ही कहीं भी नहीं है । इस पर स्वामी जी ने कहा कि यदि वेद* में यह पाठ न होवे तो हमारा पराजय हो और जो हो तो तुम्हारा पराजय हो यह प्रतिज्ञा लिखो। तब सब चुप हो रहे ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—व्याकरण जानने वाले इस पर कहें कि व्याकरण में कहीं कल्मसंज्ञा करी है वा नहीं ?

तब बालशास्त्री ने कहा कि—संज्ञा तो नहीं की है परन्तु एक सूत्र में भाष्यकार ने उपहास किया है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि—किस सूत्र के महाभाष्य में संज्ञा तो नहीं की और उपहास किया है । यदि जानते हो तो इसके उदाहरण पूर्वक समाधान कहो ?

तब बालशास्त्री और औरों ने कुछ भी न कहा । माधवाचार्य ने दो

*** यह उन्हीं पण्डितों के मतानुसार कहा है किन्तु स्वामी जी तो छान्दोग्य उपनिषद् को वेद नहीं मानते ।**

पत्रे वेदों के* निकालकर सब पण्डितों के बीच में रख दिये और कहा कि– यहां 'यज्ञ के समाप्त होने पर यजमान दशवें दिन पुराणों का पाठ सुने' ऐसा लिखा है । यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है ?

स्वामी जी ने कहा कि–पढ़ो इसमें किस प्रकार का पाठ है ? जब किसी ने पाठ न किया तब विशुद्धानन्द जी ने पत्रे उठा के स्वामी जी की ओर करके कहा कि तुम ही पढ़ो ।

स्वामी जी ने कहा कि–आप ही इसका पाठ कीजिए ।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि–मैं ऐनक के विना पाठ नहीं कर सकता, ऐसा कहके वे पत्रे उठाकर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने दयानन्द स्वामी जी के हाथ में दिये ।

इस पर स्वामी जी दोनों पत्रे लेकर विचार करने लगे । इसमें अनुमान है कि ५ पल व्यतीत हुए होंगे कि ज्यों ही यह उत्तर कहा चाहते थे कि–

''पुरानी जो विद्या है उसे पुराणविद्या कहते हैं और जो पुराणविद्या वेद है वही पुराणविद्या वेद कहाता है । इत्यादि से यहां ब्रह्मविद्या ही का ग्रहण है क्योंकि पूर्व प्रकरण में ऋग्वेदादि चारों वेद आदि का तो श्रवण कहा है, परन्तु उपनिषदों का नहीं कहा । इसलिए यहां उपनिषदों का ही ग्रहण है, औरों का नहीं । पुरानी विद्या वेदों ही की ब्रह्मविद्या है । इससे ब्रह्मवैवर्त्तादि नवीन ग्रन्थों का ग्रहण कभी नहीं कर सकते क्योंकि जो यहां ऐसा पाठ होता कि ब्रह्मवैवर्त्तादि १८ (अठारह) ग्रन्थ पुराण हैं सो तो वेद में** कहीं ऐसा पाठ नहीं है । इसलिये कदाचित् अठारहों का ग्रहण नहीं हो सकता ।'' कि विशुद्धानन्द स्वामी उठ खड़े हुए और कहा कि हम को विलम्ब होता है हम जाते हैं ।

तब सब के सब उठ खड़े हुए और कोलाहल करते हुए चले गये। इस अभिप्राय से कि लोगों पर विदित हो कि दयानन्द स्वामी का पराजय***

*** ये पत्रे गृह्यसूत्र के पाठ के थे वेदों के नहीं ।**

**** यह पण्डितों के मतानुसार कहा है, यह स्वामी जी का मत नहीं है।**

***** क्या किसी का भी इस शास्त्रार्थ से ऐसा निश्चय हो सकता है कि स्वामी जी का पराजय और काशीस्थ पण्डितों का विजय हुआ ? किन्तु इस शास्त्रार्थ से यह तो ठीक निश्चय होता है कि स्वामी-दयानन्द सरस्वती जी का विजय हुआ और काशीस्थों का नहीं । क्योंकि स्वामी जी का तो वेदोक्त सत्यमत है उसका विजय क्योंकर न होवे ? काशीस्थ पण्डितों का पुराण और तन्त्रोक्त जो पाषाणादि मूर्तिपूजादि है उनका पराजय होना कौन रोक सकता है ? यह निश्चय है कि असत्य पक्ष वालों का पराजय और सत्य वालों का सर्वदा विजय होता है ॥**

हुआ । परन्तु जो दयानन्द स्वामी जी के ४ पूर्वोक्त प्रश्न हैं उनका वेद में तो प्रमाण ही न निकला फिर क्योंकर उनका पराजय हुआ?।। इति ।।

(लेखराम पृ० ५७०, दिग्विजयार्क पृ० १५)